मन डोलय रे मांघ फगुनवा,रस घोलय रे मांघ फगुनवा

अनुराग की मादक छाई छटा,अलि के मन को नशीला किया।
तितली बन नाच परी-सी चली,अनुशासन धर्म-का ढीला किया।
रंग देख पिकी हो विभोर उठी,विधि ने शिखी आँचल गीला किया
ऋतुराज पिता ने बड़े सुख से,जब मेदिनी का कर पीला किया।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भले ही विविध प्रकार से रंगों का उत्सव मनाया जाता है परंतु सबका उद्देश्य एवं भावना एक ही है। ब्रज मंडल में इस अवसर पर रास और रंग का मिश्रण देखते ही बनता है। बरसाने' की लठमार होली फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को मनाई जाती है। इस दिन नंद गाँव के ग्वाल बाल होली खेलने के लिए राधा रानी के गाँव बरसाने जाते हैं और विभिन्न मंदिरों में पूजा अर्चना के पश्चात जम कर बरसती लाठियों के साए में होली खेली जाती है। इस होली को देखने के लिए बड़ी संख्या में देश-विदेश से लोग 'बरसाना' आते हैं।

होलिका फाल्गुन मास की पूर्णिमा को कहते हैं। इस दिन इस पर्व को वसंतोत्सव के रूप में मनाया जाता है। कुछ स्थानों पर फाल्गुन पूर्णिमा के कुछ दिन पूर्व ही वसंत ऋतु की रंगरेलियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। वस्तुत : वसंत पंचमी से ही वसंत के आगमन का संदेश मिल जाता है। होलिकोत्सव को फाल्गुन-उत्सव भी कहते हैं। यह प्रेम, नव-सृजन और सदभावना का पर्व है। सड़क पर, गलियों में,गृह-द्वार पर धनी-निर्धन, जाति-पंक्ति का भेद मिट जाता है। इस प्रकार होली प्रेम,उल्लास और समानता का पर्व है। प्रह्लाद का अर्थ आनंद होता है। वैर और उत्पीड़न की प्रतीक होलिका जलती है और प्रेम तथा उल्लास का प्रतीक प्रह्लाद अक्षुण्ण रहता है।

पहले होली का त्यौहार पाँच दिन तक मनाया जाता था इसके कारण पहले रंग पंचमी भी मनाई जाती थी। लेकिन अब यह दो दिन ही मनाया जाता है। वसंत के साथ ही प्रकट होते हैं- अनेक रंग के फूल, सुगंध, भौंरों के गुंजार और तितलियों के बहुरंगी विहार। सर्दी की विदाई के साथ सुहानी धूप में जब सरसों के पीले फूलों की आमद होती है तब आती है ऋतुराज बसंत की बारी और महक उठती है फूलों की क्यारी। हर तरफ़ रंग घुलने लगते हैं, मस्ती के, हंसी के, मन मोहक गुलाल, अबीर कोई टोकाटाकी नहीं। बस गुलाल तो लगानी ही है।

समय के साथ अनेक चीज़ें बदली हैं लेकिन इस पर्व की मोहकता और मादकता की मिसाल नहीं। सभी इसका इंतज़ार करते हैं। आज भी भारत के गाँव में इस दिन जितना हो सके पुराने कपड़े पहनते हैं तथा धूल कीचड़ रंग गोबर काला जो भी हाथ लगे रंग देते हैं, कह देते हैं बुरा न मानों होली है। इन रंगों के घुलने के साथ ही तरोताज़ा रहती है साल भर होली की यादें प्यारी-सी हँसी, घूँघट से झाँकती प्रेयसी इसी इंतज़ार में निहारती है कि कब मुझे रंगेगा मेरा यार। भूल जाते हैं गम़ सब हो जाते हैं एकसार। ऐसा है होली का त्यौहार।

प्राचीन काल से अविरल होली मनाने की परंपरा को मुगलों के शासन में भी अवरुद्ध नहीं किया गया बल्कि कुछ मुगल बादशाहों ने तो धूमधाम से होली मनाने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया। मुगल काल में होली के अवसर पर लाल किले के पिछवाड़े यमुना नदी के किनारे और जहाँ आरा के बाग में होली के मेले भरते थे। भारत ही नहीं विश्व के अन्य अनेक देशों में भी होली अथवा होली से मिलते-जुलते त्योहार मनाने की परंपराएँ हैं। कवियों और कलाकारों का सदाबहार विषय ऋतुराज वसंत केवल प्रकृति को ही नवीन नहीं करता भिन्न कलाकारों को भिन्न प्रकार की प्रेरणाओं से भी अभिभूत करता है। लोक साहित्य हो या इतिहास पुराण, चित्रकला या संगीत इस ऋतु ने हर कला को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि संगीत की एक विशेष शैली का नाम ही होली है। इतिहास पुराण भी इसके उल्लेखों से बचे नहीं हैं। किंवदंतियों और हास्य कथाओं के ख़ज़ानों में भी इस पर्व का ज़ोरदार दख़ल है।

एक किंवदंती यह है कि जब पार्वती के लाख प्रयत्न के बाद भी भगवान भोलेनाथ प्रसन्न नहीं हुए तो नारद के कहने पर कामदेव को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा गया। कामदेव ने शंकर को रिझाने के लिए कई यत्न किए थे लेकिन भगवान शंकर ने रुष्ट होकर कामदेव को ही जला दिया ऐसे में संसार का सृजन चक्र ही रुक गया। रति ने अपने पति को जीवित करने के लिए भगवान को मनाया और कामदेव नि :शरीर जीवित हो गए। इस खुशी में भी होली मनाई जाती है।

हिरण्यकश्यपु की कहानी भी इससे जुड़ी हुई है। लाख मना करने पर भी प्रह्लाद ने भगवान विष्णु का नाम जपना नहीं छोड़ा। उधर हिरण्यकश्यपु भी महान प्रतापी था, उसने भगवान ब्रह्मा एवं शिव से ऐसे वरदान माँग रखे थे कि उसे कोई सामान्य नर, नारी, पशु या पक्षी कोई भी मार नहीं सकता था। ऐसी स्थिति में भगवान नृसिंह को उग्र रूप धारण करके विशेष समय, परिस्थिति और रूप में अवतरित हो कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए आना पड़ा।

कृष्ण और राधा की अनेक कथाओं के साथ होली और वसंतोत्सव के वर्णन मिलते हैं। गोकुल की ग्वालिनें अपने आराध्य कान्हा को रिझाने के लिए अनेक लीलाएँ रचा करती थी जिसमें रंग, गुलाल और जल क्रीडाएँ शामिल थीं। एक अन्य किंवदंती के अनुसार पूतना राक्षसी के वध की खुशी में भी होली मनाई जाती है। कृष्ण की जन्म और कर्म भूमि मथुरा वृंदावन ब्रज बरसाने और गोकुल में आज भी होली की धूम देखते ही बनती है।

होली के पर्व का सुंदर विवरण संस्कृत में दशकुमार चरित एवं गरूड पुराण में तथा हर्ष द्वारा रचित नाटक रत्नावली (जो सातवीं सदी में लिखा गया था) में मिलता है। उस समय इसे वसंतोत्सव के रूप में मदनोत्सव के रूप में मनाते थे। भवभूति, कालिदास आदि ने भी अपने महाकाव्यों में रंग रंगीली होली के बारे में दत्त चित्त हो कर वर्णन किया है।

होली पर अलग-अलग स्थान पर अपने किस्म की निराली परम्पराएं देखी जा सकती हैं। मालवा में होली के दिन लोग एक दूसरे पर अंगारे फैंकते हैं। उनका विश्वास है कि इससे होलिका नामक राक्षसी का अंत हो जाता है। पंजाब और हरियाणा में होली पौरुष के प्रतीक पर्व के रूप में मनाई जाती है। इसीलिए दशम गुरू गोविंद सिंह जी ने होली के लिए होला महल्ला शब्द का प्रयोग किया। गुरु जी इसके माध्यम से समाज के दुर्बल और शोषित वर्ग की प्रगति चाहते थे। होला महल्ला का उत्सव

आनंदपुर साहिब में छ: दिन तक चलता है।

राजस्थान में भी होली के विविध रंग देखने में आते हैं। बाड़मेर में पत्थर मार होली खेली जाती है तो अजमेर में कोड़ा अथवा सांतमार होली कजद जाति के लोग बहुत धूम-धाम से मनाते हैं। राजस्थान के सलंबूर कस्बे में आदिवासी 'गेर' खेल कर होली मनाते हैं। जब युवक गेरनृत्य करते हैं तो युवतियाँ उनके समूह में सम्मिलित होकर फाग गाती हैं। युवतियाँ पुरुषों से गुड़ के लिए पैसे माँगती हैं। इस अवसर पर आदिवासी युवक-युवतियाँ अपना जीवन साथी भी चुनते हैं।

मध्य प्रदेश के भील होली को भगौरिया कहते हैं। शांति निकेतन में होली अत्यंत सादगी और शालीनतापूर्वक मनाई जाती है। प्रात: गुरु को प्रणाम करने के पश्चात अबीर गुलाल का उत्सव, जिसे 'दोलोत्सव' कहा जाता है, मनाते हैं। पानी मिले रंगों का प्रयोग नहीं होता। सायंकाल यहाँ रवींद्र संगीत की स्वर लहरी सारे वातावरण को गरिमा प्रदान करती है। भारत के अन्य भागों से पृथक बंगाल में फाल्गुन पूर्णिमा पर कृष्ण प्रतिमा का झूला प्रचलित है। इस दिन श्री कृष्ण की मूर्ति को एक वेदिका पर रख कर सोलह खंभों से युक्त एक मंडप के नीचे स्नान करवा कर सात बार झुलाने की परंपरा है।

मणिपुर में होली का पर्व 'याओसांग' के नाम से मनाया जाता है। यहाँ दुलेंडी वाले दिन को 'पिचकारी' कहा जाता है। याओसांग से अभिप्राय उस नन्हीं-सी झोंपड़ी से है जो पूर्णिमा के अपरा काल में प्रत्येक नगर-ग्राम में नदी अथवा सरोवर के तट पर बनाई जाती है। इसमें चैतन्य महाप्रभु की प्रतिमा स्थापित की जाती है और पूजन के बाद इस झोंपड़ी को होली के अलाव की भाँति जला दिया जाता है। इस झोंपड़ी में लगने वाली सामग्री ८ से १३ वर्ष तक के बच्चों द्वारा पास पड़ोस से चुरा कर लाने की परंपरा है। याओसांग की राख को लोग अपने मस्तक पर लगाते हैं और घर ले जा कर तावीज़ बनवाते हैं। 'पिचकारी' के दिन रंग-गुलाल-अबीर से वातावरण रंगीन हो उठता है। बच्चे घर-घर जा कर चावल सब्ज़ियाँ इत्यादि एकत्र करते हैं। इस सामग्री से एक बड़े सामूहिक भोज का आयोजन होता है।

प्राचीन काल से अविरल होली मनाने की परंपरा को मुगलों के शासन में भी अवरुद्ध नहीं किया गया बल्कि कुछ मुगल बादशाहों ने तो धूमधाम से होली मनाने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया। मुगल काल में होली के अवसर पर लाल किले के पिछवाड़े यमुना नदी के किनारे और जहाँ आरा के बाग में होली के मेले भरते थे। इसी तरह होली विश्व के कोने-कोने में उत्साहपूर्वक मनाई जाती है। भारत में यह पर्व अपने धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक पक्षों के कारण हमारे संपूर्ण जीवन में रच बस गया है। यह पर्व स्नेह और प्रेम से प्राणी मात्र को उल्लसित करता है। इस पर्व पर रंग की तरंग में छाने वाली मस्ती जब तक मर्यादित रहती है तब तक आनंद से वातावरण को सराबोर कर देती है। सीमाएँ तोड़ने की भी सीमा होती है और उसी सीमा में बँधे मर्यादित उन्माद का ही नाम है होली।

होली का रंग-बिरंगा त्योहार हमारे देश का सबसे लोकप्रिय और प्रचलित त्योहार है। वस्तुत: यह त्यौहार मनाया जाने वाला उतना नहीं हैं, जितना कि खेला जाने वाला है। घर-घर और गली मोहल्लों में यह रंगीन त्यौहार इस प्रकार मुखरित होता है कि बच्चों से लेकर बुढ्ढे, नर-नारियों तक होली के रंग में सराबोर हो जाते हैं – इन रंग-बिरंगे चेहरों में हमारी भारतीय संस्कृति तथा हमारा भारतीय जीवन दर्शन मुखरित होता है। रंगों की अनेकता में हमारी सांस्कृतिक और दार्शनिक एकता का स्वरूप निहित है।

होली पर प्रयोग में आने वाला दूसरा रंग पीला होता है। प्राचीन काल में भारत में टेसू के फूलों से बनाया जाने वाला पीला रंग प्रचलित था। पीला रंग ज्ञान का प्रतीक है।ज्ञान हमारे मानसिक विकास का अग्रदूत है। ज्ञान हमें हमारे वास्तविक अस्तित्व का बोध कराता है और इंगित कराता है कि हमारे लिए क्या भला है और क्या बुरा ? ज्ञान का प्रकाश अपार और अपरिमित होता है। खेतों में फूली हुई पीली सरसों हमारी समृद्धि के स्वप्न का केंद्र बिंदु है। पीला रंग पौरुष, शौर्य और निर्भीकता का भी परिचायक है।

हरा रंग हमारी समृद्धि का परिचायक है। वर्षा काल में धरती पर दिखाई देने वाली हरियाली वृक्षावलियाँ प्रकृति की समृद्धि का आधार हैं। समृद्धि में ही विकास छिपा है और विकास में निहित है जीवन का अग्रगामी प्रगतिशील सोपान। शुभ और मांगलिक पर्वों पर हरे रंगों का प्रयोग हमारी अनादि संस्कृति का आधार है। घर में किसी नवजात शिशु के जन्म पर जच्चा हरी चूडियाँ पहनती हैं तथा अपनी और अपने शिशु की समृद्धि की कामना करती हैं। हरा रंग मन के लिए लुभावना और आँखों के लिये सुखद लगता है। होली का हरा रंग समृद्धि का प्रतिनिधि माना जाता है।

रंगी गुलाल मे मिली हुई चमकती अबीर अपनी सफ़ेदी के कारण बड़ी भली लगती है। सफ़ेद रंग सतोगुण का प्रतीक है । पवित्रता का आधार है सदाचार जो जीवन को निर्मल बनाता है। निर्मलता हमें सत्कार्यों के लिए प्रेरणा देती है। सत्कार्य जीवन की विशाल उज्ज्वलता की नींव होते हैं। उज्ज्वलता हमारी महानता का सूचक हैं, महानता में ही अपार धैर्य व कर हम अपनी और अपने देश की ओर से शांति की कामना अभिव्यक्त करते हैं। शांति की इसी कामना की भूमि में सहअस्तित्व का बीजारोपण होता है, जिसमें पवित्रता, शांति, स्वच्छता, निर्मलता और सदाचार के सतोगुणी वृक्ष पुष्पपित एवं पल्लवित होते हैं।

अत : हम होली के इस पावन पर्व पर रंग-बिरंगे अबीर और गुलाल उड़ाकर तथा एक – दूसरे पर रंग डालकर आपस में परस्पर प्रसन्नता, शक्ति, ज्ञान, समृद्धि व शांति की कामना करते हैं। यह होली का एक अव्यक्त दार्शनिक पक्ष है,जो हमारे इस सांस्कृतिक पर्व के अवसर पर हमारे समक्ष साकार अवतरित होता है। हाँ,त्यौहार की खुशियों के साथ हमारे कुछ सामाजिक कर्तव्य भी हैं, जिन्हें अवश्य याद रखना चाहिए। हमारी संस्कृति में ही जल को देवता माना गया है. हम जल की पूजा करते हैं. जल के बिना हमारा कोई धार्मिक अनुष्ठान संपन्न नहीं होता. जल के प्रति श्रद्धा हमारे संस्कारों में है, इसलिए जल संरक्षण का ध्यान भी रखा जाना चाहिए।

होली रंगों का त्योहार है, हँसी-खुशी का त्योहार है, लेकिन होली के भी अनेक रूप देखने को मिलते है। प्राकृतिक रंगों के स्थान पर रासायनिक रंगों का प्रचलन, भांग-ठंडाई की जगह नशेबाजी और लोक संगीत की जगह अश्लील गानों का प्रचलन इसके कुछ आधुनिक रूप हैं। लेकिन इससे होली पर गाए-बजाए जाने वाले ढोल, मंजीरों, फाग, धमार, चैती और ठुमरी की शान में कमी नहीं आती। अनेक लोग ऐसे हैं जो पारंपरिक संगीत की समझ रखते हैं और पर्यावरण के प्रति सचेत हैं। इस प्रकार के लोग और संस्थाएँ चंदन, गुलाबजल, टेसू के फूलों से बना हुआ रंग तथा प्राकृतिक रंगों से होली खेलने की परंपरा को बनाए हुए हैं, साथ ही इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान भी दे रहे हैं। ऐसे प्रयत्नों में सब को साथ देना होगा।

निराला जी इस ऋतु में झूमकर कहते हैं –

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।

हवा चली, गले खुशबू लगी कि वे बोले,
समीर-सार के होते हैं ये बहार के दिन।

और यह भी कि हमारी छत्तीसगढ़ी 'भाखा' भी तो होली पर झूमती-गाती कह उठती है –

मन डोलय रे मांघ फगुनवा
रस घोलय रे मांघ फगुनवा
राजा बरोबर लगे मौर आमा
रानी सही परसा फुलवा
मन डोलय रे मांघ फगुनवा
रस घोलय रे मांघ फगुनवा
रस घोलय रे मांघ फगुनवा
हो मन डोलय रे मांघ फगुनवा

==========

प्राध्यापक,दिग्विजय पीजी कालेज,
राजनांदगांव। मो.9301054300

.